'RESEARCH JOURNEY' International Multidisciplinary E- Research Journal | ISSN : 2348-7143
Impact Factor - (SJIF) - 6.261(2017), (CIF) - 3.452(2015), (GIF) - 0.676 (2013)
UGC Approved Journal   Special Issue 66-   October, 2018

ग्लोबल वार्मिंग : समस्या और समाधान

डॉ. बी. आर. नळे
हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव.
भ्रमण-ध्वनि: ९६६५९०५६३८
ई-मेल: brmoshree@gmail

आज विश्व के सामने सबसे बडी समस्या है- 'ग्लोबल वार्मिंग' अर्थात 'वैश्विक तापमान वृध्दि' की। हरितग्रह और शीतगृह से निकलनेवाली गैस, परमाणु परिक्षण तथा विस्फोट से निकलनेवाली विकिरण और धुवाँ, नाभिकीय प्रक्रिया में उत्पन्न उच्छिष्ट पदार्थ, रासायनिक कुडा-कचडा और रसायन मिश्रीत पानी, सिमेंट उद्योग से वातावरण में मिलनेवाली धूल और धुवाँ, छोटे-मोटे उद्योग-व्यवसाय, यातायात के साधन और घरेलु क्षेत्र में किया जानेवाला कोयला, इंधन, गैस और लकडी का प्रज्वलन आदि की वजह से भूपृष्ठ के वातावरन में धूल, जहरीली गैस, कार्बनडाय ऑक्साइड, सल्फरडाय ऑक्साइड, नायट्रोजन ऑक्साइड की पर्त जमकर भूपृष्ठ का तापमान बढा रहा है। जिसकी वजह से वैश्विक तापमान में निरंतर वृध्दि हो रही है। तापमान में वृध्दि होने की वजह से सागर और नदियों के पानी की भांप तेज होने लगी है। यही भांप वातावरण में स्थित पर्त में एकरूप होकर जमने लगी है। जो जमीन से उत्सर्जित होनेवाली उष्णता को पृथ्वी के वातावरण में रोककर रखने का कार्य करने लगी है। तो वातावरण में स्थित कार्बनडाय ऑक्साइड सूर्य से निकलनेवाली लघु लहरियों को जमीन की ओर आने तो दे रहा है लेकिन जमीन से परावर्तीत होनेवाली लहरियों को (स्वयं) सोककर अपने आस-पास का वातावरण गर्म करने लगा है। उसमें से उत्सर्जित होनेवाली उष्णता जिस तरह वातावरण की ओर जा रही है वैसे जमीन की ओर भी आ रही है। उसकी वजह से फिर हवा, पानी और जमीन गरम होने लगी है। इस प्रकार का चक्र शुरू हुआ है। जिसकी वजह से वैश्विक तापमाण में दिन-ब-दिन वृध्दि होती नजर आ रही है। ओझन वायु पर परिणाम होने की वजह से भी तापमाण में वृध्दि होने लगी है।

इस प्रकार की वैश्विक तापमान वृध्दि ने संपूर्ण विश्व के सामने अनेक समस्याओं को निर्माण किया है। पहली समस्या है- 'अम्ली वर्षा' के विश्व व्यापी खतरे की। आज कार्बोनिक अम्ल, सल्फ्युरिक अम्ल, नायट्रिक अम्ल से युक्त वर्षा होने लगी है। जिसकी वजह से हमारे पानी के स्त्रोत अम्लीय और क्षारिय हो रहे है, ऐतिहासिक धरोहरों (भवन, किले और स्मारक आदि) की कभी न पूर्ति होनेवाली हानि हो रही है, जमीन की उपजाऊ क्षमता (फसल और पौदों के विकास में रूकावट) पर परिणाम हो रहा है, जीवों की त्वचा, हड्डियों के कैल्शीयम, भोजन आदि पर परिणाम हो रहे हैं, शारीरिक और मानसिक क्षमता पर परिणाम हो रहा है, वनस्पति और जंगल नष्ट होने लगे है, समुद्र में अम्ल और क्षार की मात्रा बढ जाने के कारण सागर जीव सृष्टि के अस्तित्व और सुरक्षा का प्रश्न निर्माण हो रहा है। जिसकी ओर संकेत करते हुए हेनरिक्सन ने लिखा है - "अम्ली वर्षा कुछ भी नहीं बख्शती है। जिसको बनाने में मनुष्य को कई दशक या समय लगा है और जिसे विकसित करने में प्रकृति को हजारों वर्ष लगे है, वह केवल कुछ ही वर्षो में नष्ट होकर खाक में मिल रहा है।"[१] आज संपूर्ण विश्व को इस प्रकार की समस्या ने अपना शिकार बनाया है।

वैश्विक तापमान वृध्दि के साथ जुडी दुसरी महत्वपूर्ण समस्या है- 'असंतुलन और अनिश्चितता' की। हमारा पर्यावरण पंचतत्वों के उचित अनुपात से बना है। जिसमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का समावेश होता है। आज हमने उद्योग संस्कृति को बढावा देते हुए उनमें असंतुलन की स्थिति निर्माण की है। जिसकी वजह से सृष्टि का चक्र बिगडकर उसमे अनिश्चितता आ गई है। कहीं अतिवृष्टि और बाढ की चपेट में आकर गांव के गांव पानी में समाने लगे है तो कहीं अकाल गिरने की वजह से पानी-पानी करते हुए लोग भटक रहे है। आए दिन ज्वालामुखी और भूकंप कहीं ना कहीं

241

Scanned by CamScanner

होने लगे है। आँधी और तुफानों (त्सुनामी जैसी भयंकर) ने लोगों के नाक में दम लाकर छोड दिया है। बढते तापमाण को सह न पाने के कारण कई जीव मृत्यु के शिकार हो रहे हैं तो दूसरी तरफ सर्दी बढने की वजह से सीकुडकर मरने लगे है। ऋतुओं का चक्र तो पूरी तरह से गडबडा गया है। धूपकाल के दिनों में बरसात होने लगी है तो बरसात के दिनों में धूपकाल पडने लगा है और सर्दी के दिन तो गायब ही हो गए हैं। तापमाण में वृध्दि होने की वजह से हिमाच्छादित नदियों को बाढ आने का खतरा मंडराने लगा है, तो दूसरी तरफ जंगलों को आग लग जाने के कारण वे नष्ट होने लगे है। ऐसे परिदृश्य में जिन बीमारियों से मुक्ति पाने के लिए हमने कई दशक बीताए है, वह बीमारियाँ फिर से अपना फन फैला सकती है। जिसकी वजह से जीव-सृष्टि और प्रकृति के भरण-पोषण, स्वास्थ्य, स्थैर्य और सुरक्षा का संकट खडा होने लगा है। ऐसा होने के बावजूद औद्योगिकीकरण को हमारे विकास का मानदण्ड बनाकर उसको बढावा देने का कार्य सभी देशों की ओर से होने लगा है। पर्यावरण, प्रकृति और जीव-सृष्टि की सुरक्षा के प्रति इतनी बडी उदासिनता हमारे विनाश का कारण बन सकती है। इसको हम भूलते जा रहे है। आज हम भौतिक रूप से समृध्दि होते जा रहे हैं किन्तु प्रदूषण और अम्लो वर्षा की वजह से हमारे जीवनमान में गिरावट आने लगी है। इतना सब होने के बावजूद निजी स्वार्थ में आकर देश की सरकारें, उद्योगपति और वैज्ञानिकों की मिली भगत उसे विकास, प्रगति और उन्नति की अनिवार्य शर्त बताने की कोशिश करने लगी है। भौतिक विकास तो सबको दिखाई दे रहा है, लेकिन पिछले दरवाजे से आ रहा विनाश का तांडव कोई नहीं देख रहा। उस तांडव की ओर संकेत करते हुए जल पुरूष तथा मैगसेस सम्मान प्राप्त डॉ.राजेंद्र सिंह लिखते हैं - "हमने अपने सुख के लिए, स्वार्थ के लिए, ऐयाशी जीवन के लिए धरती मां का गला दबा रहे हैं। विकास की अतिमहत्वकांक्षा हमें विनाश की ओर ले जा रही है। विकास की परिभाषा बनाते समय हमने जानबूझकर पर्यावरण को अलग किया है और इस प्रकार के विकास की अतिमहत्वकांक्षा की वजह से मानवी हस्तक्षेप बढने की वजह से जीव सृष्टि नष्ट होती जा रही है। इस लिए धरती को ताप आ गया है। वह बीमार पडी है। उसका ताप कम करने के लिए धरती पर हरियाली को बढाना होगा और यह कॉमन सेन्स की बात है।"[२] इसलिए हमें विकास की परिभाषा को पर्यावरण को केंद्र में रखकर करनी चाहिए।

हम देख रहे हैं कि, उत्पादन पध्दति में आ रहे बदलाव, यातायात की अति सुविधा, बढता यांत्रिकीकरण, अज्ञान और प्रौद्योगिकी द्वारा निर्मित उत्पादन एवं उकरण इस प्रकार के विनाश के लिए जिम्मेदार है। इस पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए विचार करने की बजाय उद्योगपति, देश की सरकारें और वैज्ञानिकों की मिली-भगत इसकी राजनीति ही करती दिखाई दे रही है। अमेरिका, चीन, युरोपीय देशों के महासंघ जैसे विकसित और विकसनशील देशों में कार्बोत्सर्जन का प्रमाण बढ रहा है। वैश्विक तापमाण वृध्दि की दृष्टि से उसे तुरंत बंद करने की आवश्यकता होने के बावजूद सभी देशों की चर्चाएँ अर्थव्यवस्था के केंद्र में घुमती नजर आ रही है। आपका उत्सर्जन अधिक की हमारा? आपको बंद करने की आवश्यकता है या हमें? इस प्रकार के मुद्दों को लेकर विकसित और विकसनशील देश आपस में झगडने लगे (दुसरे देशों को ठगाने के लिए मात्र) है। जिसका सबसे अधिक परिणाम विकसनशील देशों को भूगतना पड रहा है। जिसकी वजह से शिखर परिषद की सभा, संधियों आदि में केवल चर्चा का रसपान ही होता नजर आ रहा है। सन् १९९२ में वैश्विक करार होने के बावजूद उसपर किसी ने अमल नहीं किया है। 'लिया' में सन् २०१४ में जागतिक कॉप परिषद का आयोजन किया था। जिसमें वैश्विक तापमाण में वृध्दि करनेवाले प्रकल्पों को नियंत्रित करने का प्रावधान था, जिसे प्रस्तुत करने के लिए अनुमति न मिलना किसकी ओर संकेत करता है। अतिसंवेदनशील मुद्दों पर केवल स्वार्थ की राजनीति हो रही है। एक-दूसरों की ओर उंगली उठाने के अलावा कुछ नहीं हो रहा है। जिसकी वजह से विकास का दहशतवाद उल्टा पर्यावरण पर ही हावी होता जा रहा है।

हमें एक बात आवश्य याद रखनी चाहिए कि, देश भले ही अनेक हो लेकिन पृथ्वी एक है। इस लिए उसके रक्षण का दायित्व हम सबका है। धरती का ताप कम करने के लिए हमें पर्यावरण के साथ मित्रवत व्यवहार करनेवाली जीवन शैली को विकसित करना चाहिए। साथ ही उसका प्रचार-प्रसार करते हुए उसे प्रोत्साहन और बढावा भी देने की आवश्यकता है। हमारी जीवन शैली और आर्थिक विकास पूर्णतः पर्यावरण पर निर्भर होने के कारण उसके संदर्भ में बनाए गए कायदे-कानून

242

Scanned by CamScanner

का पालन कठोरता से करने की आवश्यकता है। हमें सभी प्रकार की वस्तु, उपकरण, पदार्थ और सेवा-सुविधाओं की प्राप्ति पंच महाभूतों से बनी सृष्टि के द्वारा होती है। इस कारण हमें उसका समग्र रूप से आकलन करने की आवश्यकता है। आज औद्योगिकीकरण, जनसंख्यावृध्दि, विकास प्रकल्प, रस्ते आदि की वजह से जंगल और हरितकरण का क्षेत्र कम होता जा रहा है, जिसे तुरंत बढाने का प्रयास करना चहिए। परम्परागत ऊर्जा का कम से कम इस्तेमाल करते हुए नए विकल्प खोजने का प्रयास करना चाहिए। अमीर और गरिबों (देश और व्यक्ति) में विकास के फलों का समान वितरण होना चाहिए। विषमता और दाँव-पेंच की मानसिकता कम करने का प्रयास करना चाहिए। मुनाफा होता है तो अपना और नुकसान होता है तो दूसरे की जिम्मेदारीवाला रवैय्या त्यागकर सबने उसकी रक्षा के लिए सामने आने की आवश्यकता है। किसी भी तरह का विकास प्रकल्प स्थापित करते समय पर्यावरण में कितना हस्तक्षेप करना है, उसकी न्यूनतम मर्यादाओं का निर्धारण करके उसके अंतर्गत उसे खडा करना चाहिए।

एक प्रकार से कहें तो हमें आज विकास के लिए नए मानदण्ड और मॉडल को विकसित करने की आवश्यकता है। इसकी ओर संकेत करते हुए प्रसिध्द वैज्ञानिक रघुनाथ अनंत माशलकर लिखते हैं- "हमें अपने मूल्यांकन के तरिकों तथा मूल्यतंत्र में भी परिवर्तन करना होगा। अभी तक हम अपनी आर्थिक प्रगति को परम्परागत संकेतों, जैसे- सकल राष्ट्रीय उत्पादन, सकल घरेलू उत्पादन आदि की सहायता से आंकते थे। पर अब हमें नए संकेतों, जैसे- सकल प्राकृतिक उत्पादन और सकल प्राकृतिक संतुलन संबंधी उत्पाद का विकास करना होगा। इस प्रकार के संकेत न सिर्फ प्रगति का आकलन करेंगे, वरन् पृथ्वी-संतुलन के साथ मित्रवत अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक परिवर्तनों को भी दर्शाएँगे।"[३] इस तरह के वैश्विक स्तर पर मूल्यांकन के तंत्र को विकसित करके वैश्विक तापमाण वृध्दि को कम किया जा सकता है।

आज विश्व के लगभग सभी देश महासत्ताक बनने के तथा देश का विकास, प्रगति, समृध्दि और सुरक्षा के नाम पर अण्विक शस्त्रास्त्रों की बडे पैमाने पर निर्मिति करने लगे है। जिसमें उनका अधिकांश धन, श्रम और वैज्ञानिकों की बौध्दिक क्षमता खर्च होने लगी है। जिसकी वजह से राष्ट्र के विकास की गति धीमी पड जाने के कारण लगभग सभी देशों के अंतर्गत गरीबी, भूखमारी, बेकारी, कुपोषण जैसी गंभीर समस्याएँ जोर पकडने लगी है। देश के युवकों के सपनों की बली उसमें जाने के कारण वे हिंसा, क्रोध, घृणा और नफरत के भाव से घिरकर मरने मारने पर उतारू होने लगे है। हिंसात्मक प्रवृत्ति और सोच की साथ देने लगे है। उसकी ओर ध्यान देने की बजाय राजनीतिक लोग विश्व पर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए तथा दूसरों को अपनी गुलामी में रखने के लिए अण्विक शस्त्रास्त्रों को ही बढावा देने लगे है। तो कुछ देश भविष्य में आनेवाली गुलामी का सामना करने के लिए अण्विक शस्त्रस्त्रों का निर्माण करने लगे है। 'हम भी किसी से कम नहीं' वाली भावना की वजह से वैश्विक स्तर पर अंतरराष्ट्रीय द्वेश भावना बढती जा रही है। सत्ता संघर्ष बढ रहा है। तो देशांतर्गत समस्याओं ने देश को खोकला करना शुरू किया है। जिसकी वजह से गद्दारों (आतंकवादी और दहशतवादी) की फौज खडी होने लगी है। जो अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकती है। इस प्रकार के संशय सादृश्य वातावरण ने तृतीय विश्वयुध्द की अशंका को बढावा देना शुरू किया है। ऐसे में किसी ने अगर इस प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया तो संपूर्ण जीव-सृष्टि का संहार हो सकता है। उसकी भीषणता की ओर संकेत करते हुए रंजीत कुमार ने लिखा है- "सबसे बडी समस्या यह है कि, परमाणु विस्फोट के बाद किसी शहर में केवल मरीज ही मरीज रहेंगे। जब डाक्टर ही इसकी चपेट में आ जायेंगे तो जले हुए लोगों का इलाज कौन करेगा?... कितने लोगों का इलाज कर पायेंगे? ... और फिर चूँकि सभी लोग तेज गर्मी के कारण इतनी बूरी तरह जल चूके होंगे कि, उन्हें अस्पताल पहुँचानेवाल भी कोई नहीं बचेगा।"[४] क्योंकि आज द्वितीय विश्व युध्द में प्रयुक्त अण्विक शस्त्रास्त्रों से भी अधिक शक्तिशाली और विध्वंसक अण्विक-जैविक-रासायनिक शस्त्रास्त्रों की निर्मिती मानव ने की है। जो पलक झपकते ही संपूर्ण सृष्टि को अपनी शिकार बना सकते हैं। जैविक (विशाणु और जीवाणु) और रासायनिक (जहरीले पदार्थ से बनी गैस) शस्त्रास्त्रों का प्रयोग तो अण्विक अस्त्रों से भी अधिक विध्वंसकारी साबित हो सकता है।

243

Scanned by CamScanner

'RESEARCH JOURNEY' International Multidisciplinary E- Research Journal | ISSN : 2348-7143
Impact Factor - (SJIF) -6.261(2017), (CIF) -3.452(2015), (GIF) -0.676 (2013)
UGC Approved Journal Special Issue 66- October. 2018

ऐसा नही है कि, आण्विक शक्ति का प्रयोग केवल युध्द के लिए ही किया जा सकता है। उस शक्ति का प्रयोग मानव हित के लिए भी किया जा सकता है। जैसे विद्युत उत्पादन, चिकित्सीय निदान और उपचार, चिकित्सीय अपूर्ति का निर्जंतुकीकरण, खाद्य परिरक्षण, औद्योगिक विकिरण विज्ञान जैसे अनेक क्षेत्रों में उसका उपयोग करके मानव जीवन को सरल, सुरक्षित और प्रगत बनाया जा सकता है। लेकिन आज के मानव में जीव सृष्टि की रक्षा, विकास और प्रगति के लिए कम और विध्वंसक गतिविधियों को अंजाम देने के लिए ज्यादा प्रयोग करने की बेताबी बढने लगी है। एक प्रकार से कहें तो आज की वैज्ञानिक शक्ति पर अमल करने वाले मुठ्ठिभर लोगो ने अहंकार, गर्व और लालसाओं के चक्कर में आकर संपूर्ण मानव जाति की बुध्दि, विवेक, संवेदना, धर्म, अध्यात्म की सारी शक्तियों को छीनकर 'बली का बकरा' बनाना शुरू किया है। अहिंसा, प्रेम और भाईचारे से संपूर्ण विश्व को जीता भी जा सकता है और उसपर अधिराज्य भी स्थापित किया जा सकता है, जो सर्वथा सबके लिए उचित और लाभदायक हो सकता है। लेकिन आज का मानव इस बात को भूलता जा रहा है। प्रथम विश्वयुध्द के बाद संपूर्ण मानव जाति को इसका एहसास दिलाते हुए म. गांधी ने कहा था - ''अहिंसा मानवता को उपलब्ध सबसे बड़ा बल है। मनुष्य ने अपनी होशियारी से विनाश के जो शक्तिशाली-से-शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्र बनाए हैं, अहिंसा उनसे भी अधिक शक्तिशाली है। विनाश मानवता का नियम नहीं है। मनुष्य कभी अपने भाई को मारकर नहीं बल्कि जरूरत पडे तो उसके हाथों मरने के लिए तैयार रहकर आजादी से जीता है। प्रत्येक कत्ल अथवा दूसरे को पहुँचाई गई वह चोट, वह चाहे जिस कारण से हो, मानव के प्रति अपराध है।''[५] हमें अपने अंदर की हिंसात्मक वृत्ति को त्यागकर अहिंसा का रास्ता अपनाने की आवश्यकता है। इसी रास्ते पर चलते हुए हम अपनों के साथ दूसरों की प्रगति, उन्नति और विकास कर सकते हैं। भयमुक्त वातावरण में ही सबके जीवन में सुख, शांति और आनंद के क्षण आ सकते हैं। इसी को प्राप्त करना मानव जीवन का अंतीम उद्देश होता है। जिसकी प्राप्ति अहिंसा के मार्ग पर चलने से होती है। आज यही अस्त्र (अहिंसा और उदात्तभावना) तृतीय विश्वयुध्द को कब्र में पैर लटकाई हुई मानवीयता को बचा सकता है।

विशेषत: आज अमेरिका के सामने इस प्रकार की परिस्थिति को निपटाने की सबसे बडी चुनौती है। पं. नेहरू ने भी अमेरिका में आयी नैतिक और अध्यात्मिक मूल्य की कमी और अपराधिक जगत का बढता दायरा देखकर कहा था- ''औद्योगिक दृष्टि से समृध्द होनेवाले तथा समृध्द जीवन जनता को उपलब्ध कर देनेवाले बडे-बडे देशों के सामने नए प्रश्न निर्माण होने लगे है। आगे के दशक में इन प्रश्नों की तीव्रता और बढनेवाली है। ... विशेषत: अमेरिका के सामने निठ्ठले लोगों का उचित इस्तेमाल किस तरह किया जा सकता है ? इस प्रकार का प्रश्न गंभीर बनता जा रहा है। हर दिन युवकों की अपराधिक घटनाएँ सुनने में आ रही है। ... ऐसे समय में अध्यात्मिक मूल्य और नैतिक मूल्य महत्वपूर्ण हो सकते हैं। मानव का मन किसी न किसी भूख से पीडित होता है। इस प्रकार की भूख का उत्तर नैतिक और अध्यात्मिक समृध्दि के माध्यम से दिया जा सकता है।''[६] इस पर अमेरिका के साथ अन्य देशों को विचार करने की आवश्यकता है। क्योंकि जब तक कोई भी देश प्रत्येक व्यक्ति को सुपर पॉवर नहीं बनाता तब तक वह देश न कभी देशांतर्गत समस्याओं का निपटारा कर सकता है, न कभी वह विश्व में सुपर पॉवर बन सकता है। इसके लिए सभी देशों ने अपने-अपने देशांतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को सुपर पॉवर बनाने के लिए धर्म (मानवीय मूल्य), अध्यात्म (नैतिक मूल्य), तत्वज्ञान (प्राकृतिक मूल्य) और विज्ञान (वैज्ञानिक मूल्य) को केंद्र में रखकर आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए। तभी प्रत्येक व्यक्ति अपनी आंतरिक क्षमताओं का विकास करके भौतिक समृध्दि का उचित लाभ उठाएगा। एक-दूसरे के काम आते हुए वैश्विक समस्या को शांति के मार्ग से सुलझाकर संपूर्ण सृष्टि को होनेवाले विनाश से बचाएगा। जो देश इस दिशा में पुख्ता कदम उठायेगा, भविष्य में विश्व मानव उसे ही सुपर पॉवर के रूप मे स्वीकारेगा। हमें भी इस दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता है। क्योंकि आज जो अमेरिका की स्थिति बन गई है, वह भविष्य में हमारी भी बन सकती है।

आज विकास, प्रगति और समृध्दि में सबसे आगे रहने के भ्रम ने संपूर्ण विश्व में बवाल मचा दिया है। इसी के चलते सभी देश एक-दूसरों को नीचे दिखाने के लिए, अधिकार जमाने के लिए, गुलामी से मुक्त रहने के लिए, आत्मनिर्भर

244

Scanned by CamScanner

बनने के लिए तथा विकास की अनिवार्यता के नाम पर अपने अपने देशवासियों को विज्ञान-प्रौद्योगिकी के विकास की अनिवार्यता समझाते हुए उसको बढ़ावा देने लगे है। जिसके चलते प्रदूषण, जनसंख्यावृध्दि, रासायनिक-जैविक-आण्विक युध्द, अण्विक रेडिएशन, जंगलों की कटाई, विभिन्न खनिजों का बेतहाशा दोहन और प्रज्वलन, वंशवादवाद और आतंकवाद आदि से पृथ्वी नामक ग्रह को जीवसृष्टि के रहने लायक नहीं रखा है। वैज्ञानिकों ने बार बार चेतावनी देने के बाद आज वैश्विक स्तर पर उन समस्याओं को सुलझाने के लिए तथा उचित नीति निर्धारित करने के लिए आज वैश्विक स्तर पर उन समस्याओं को सुलझाने के लिए तथा उचित नीति निर्धारित करने के लिए शिखर परिषदों का आयोजन अधिक मात्रा में किया जा रहा है। लेकिन नतिजा वही 'ढाक के तीन पात'। केवल बैठकें, सभा, सेमिनार, संगोष्ठी आदि में हम ऐसा करेंगे-वैसा करेंगे, जैसी आदर्शवाद की बाते करके समस्याओं को सुलझाने का ढोंग करते हुए लोगों को गुमराह करने लगे है। एक प्रकार से कहें तो विचारों पर अमल करने की बजाय विभिन्न देशों की सरकारें उद्योग-व्यावसायिक लोगों के साथ मिलीभगत करके पर्यावरण के विनाश को जानबूझकर पीछे धकेलने का, उसे छुपाने का तो कभी विकास की अनिवार्यता का नाम देकर विज्ञान-प्रौद्योगिकी को बढावा ही देने लगे है। जिस पर आज सोचते हुए उपायों पर अमल करने की आवश्यकता है।

संदर्भ-सूचि:

१. एम. मणिवासकम्, हवा और पानी में जहर, अनुवाद- सरिता भल्ल, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली - ११० ०७०, दसवीं आवृत्ति - २०१५, पृ. क्र. ११५.

२. संपा. राजेंद्र दर्डा, दैनिक लोकमत (मराठी), दि. २१ दिसंबर, २०१४ (मुख पृष्ठ से उध्दृत), पृ. क्र. ०१.

३. रघुनाथ अनंत माशलकर, वैज्ञानिक भारत का निर्माण, सामायिक प्रकाशन, नयी दिल्ली - ११० ००२, संस्करण - २००९, पृ. क्र. १३०.

४. संजीत कुमार, परमाणु बम रक्षा और राजनीति, किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली - ११० ००२, प्रथम संस्करण- २०१२, पृ. क्र. ११८.

५. आर. के. प्रभु, महात्मा गांधी के विचार, अनुवाद- यु. आर. राव, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली - ११० ०७०, प्रथम आवृत्ति - २०११, पृ. क्र. ११३-११४.

६. संपा. किशोर बेडकिहाळ, वेध नेहरू विश्वाचा, शब्द पब्लिकेशन, मुंबई - ४०० ०९१, प्रथम आवृत्ती - आक्टोबर, २०१५, पृ. क्र. ६५.

Scanned by CamScanner

VOLUME - VII, ISSUE - IV – OCTOBER - DECEMBER - 2018
AJANTA - ISSN 2277 - 5730 -IMPACT FACTOR - 5.5 (www.sjifactor.com)

१. वर्तमान में लोकतंत्र की स्थिती और गति

डॉ. बी. आर. नळे
हिंदी विभाग, सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव.

इस शोध-पत्र का लक्ष्य संविधान के 'सैध्दांतिक और प्रशासनिक' पक्ष की आलोचना करना न होकर उससे नियंत्रित 'लोकतंत्र' और 'राजतंत्र' को लेकर वर्तमान में जो विसंगति और विरोधाभास का वातावरण फैलता जा रहा है, उसके साथ जुडा है। आज मूल्य संक्रमण के दौर में हमें एक बात आवश्य याद रखनी चाहिए कि, 'भारतीय संविधान' केवल एक संविधान न होकर देश की संवैधानिक और प्रशासनिक पद्धति के महत्वपूर्ण पहलूओं से संबंधित एक विस्तृत 'वैज्ञानिक संहिता' है। जो 'संघ' और 'राज्य' की कार्य-प्रणाली को जनता के हित में काम करने के लिए दिशा-निर्देश देने का काम करती है। संविधान में वर्णित प्रावधानों के अनुसार लोकतंत्र और उसकी विभिन्न संस्थाओं का संचलन होता है। लोकतंत्र में संसदीय कार्यप्रणाली सर्वोच्च होने के बावजूद प्रशासनिक कार्यप्रणाली की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जनता द्वारा चुनकर आए हुए लोक प्रतिनिधियों से संसदीय कार्य प्रणाली चलती रहती है। जिसका कार्य सार्वजनिक नितियों का निर्धारण करना, गहन अध्ययन और अनुसंधानों के द्वारा नितियों का निर्माण करना, उन नितियों को कार्यान्वित करने के लिए प्रशासनिक कार्यालयों को आदेशित करना, सरकारी कियाकलापों पर लक्ष्य केंद्रित करना तथा सामाजिक स्वतंत्रता, समता, बंधूता, न्याय, धर्मनिरपेक्षता और साप्रदायिक सलोखा आदि को मध्यनजर रखते हुए कानून बनाना, कानून में सुधार करना और जो समय की तुला पर खरे नही उतरते उसे निष्कासित करना तथा बदलता परिवेश और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संविधान में शोधन करने के साथ जुडा होता है।

तो 'प्रशासनिक पद्धति' में प्रशासकों का कार्य संसदिय कार्य प्रणाली को कच्ची सामग्री उपलब्ध कर देना, ईमानदारी से परामर्श देना, संसदिय नीतियों को ईमानदारी से लागू करना, संविधान और कानून के दायरे में रहते हुए 'महसूलों' और 'करों' के माध्यम से 'राजस्व' को वसूल करना, मनुष्य तथा भौतिक संसाधनों का समन्वय करना, उसका समन्यायिक वितरण करना, मानवीय गतिविधियों का निर्धारण और नियंत्रण करना, मंत्रिमंडलीय दायित्व का समर्थन करते हुए लक्ष्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से कार्य करने का दायित्व होता है। यह कार्य प्रशासक को राजनीति से तटस्थ रहकर अपने 'विशिष्ट ज्ञान' के अधार पर करना पडता है। इस कारण किसी भी व्यवस्था की सफलता और असफलता का भार इनके कंधों पर भी होता है। एक प्रकार से कहें तो 'प्रशासक का कार्य स्वप्न और उसकी पूर्ति के बीच की दुनिया' के साथ जुडा होता है। इस कारण किसी भी व्यवस्था का स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति की कुंजी प्रशासन को कहा जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, जनता के अनुकूल रचनात्मक कार्य होने की दृष्टि से संविधान में लोकतंत्र और राजतंत्र की भूमिकाओं को निर्धारित किया है। जिसमें जनता की

शासन व्यवस्था और उसी के द्वारा इसकी संरचना का प्रावधान है। अर्थात जनता द्वारा जनता के लिए, जनता की अपनी शासन व्यवस्था को स्थापित करने का अंतिम अधिकार जनता को संविधान ने दिया है। जिसमें जनता की सर्वोपरी तथा सर्वत्र महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है।

जिससे हमें पता चलता है कि, देश के संविधान में अंतर्भूत लोकतंत्र में 'लोक और उसका हित' सर्वोपरी होने के साथ उसके चयन की सारी शक्ति जनता के हाथ में है। संविधान ने लोकतंत्र में सरकार को चूनकर देने का, जनता के अनुकूल काम करवाने का और न करने पर सरकार को गिराकर नए सरकार को पुर्नस्थापित करने का अधिकार जनता को दिया है। ऐसा होने के बावजूद भी वर्तमान समय में लोकतंत्र के केंद्र में न 'लोक' दिखाई देते है, न उनका 'सेवाभाव' और 'हित'। आज इसके नाम पर सिर्फ और सिर्फ लोगों के बीच संशय, संभ्रम और बाह्याडम्बर का वातावरण निर्माण करने का काम किया जा रहा है। जिसकी वजह से किसी का भी विकास होता हुआ दिखाई नहीं दे रहा। ऐसे समय में विचारक, संविधान के ज्ञाता और लोकप्रतिनिधियों ने देशवासियों के प्रति निष्ठा दिखाते हुए उनकी भूमिकाओं की व्याख्या करने के साथ उसे जानने, समझने और समझाने का प्रयास करना चाहिए। जो हमारे देश में होता हुआ दिखाई नहीं देता। बल्कि जनता को अंधेरे में रखते हुए कुछ स्वार्थी लोग लोकतंत्र को 'ढाल' के रूप में प्रयुक्त करने लगे है। जिसकी वजह से आज चरित्रहिन और नैतिक अधपतन वाले लोग भी अपने आपको लोकतांत्रिक कहने का दुस्साहस करने लगे है। जिसकी वजह से आज लोकतंत्र की अवस्था 'अंधेरी नगरी, चौपट राजा/टका शेर भाजी टका शेर खाजा' की तरह बन गई है।

हमें आजादी के सत्तर साल बाद भी बडे दुःख और अफसोस के साथ कहना पड रहा है कि, लोकतंत्र और राजतंत्र की जिम्मेदारियॉं और कर्तव्यों की जानकारी से देश की सत्तर से अस्सी प्रतिशत जनता दूर है। जिसका फायदा उठाते हुए चालाक और धूर्त लोक प्रतिनिधियों ने लोकतंत्र को चुनाव प्रकिया तक सीमित रखते हुए जनता का कार्य ओट-बैंक तक सीमित कर दिया है। जिसकी वजह से आज का लोकतंत्र चुनाव प्रकिया तक सीमित हो गया है। उसके आगे जनता की लोकतंत्र और देश की सरकार में न कोई भूमिका दिखाई देती है और न चुनकर आने के बाद अगले पांच साल तक लोक प्रतिनिधि और सरकार की कोई जिम्मेदारी। लोकतंत्र में जनता के हित में काम न करने पर एक सरकार को गिराकर दूसरे सरकार को स्थापित करने का तथा न होने पर उत्तर मांगने का अधिकार जनता का होने के बावजूद जोड-तोड, महागठबंधन और खरिद-फरोख्त के माध्यम से जोड-जुगाड करके सरकार को स्थापित करते हुए जनता पर थौंपने का कार्य राष्टीय पक्ष के साथ प्रादेषिक पक्ष खुले-आम करने लगे है। ऐसे में लोकतंत्र के उद्देशों की पूर्ति कैसे हो सकती है? इस प्रकार के संभ्रम ने देश की अस्सी फिसदी जनता की कमर तोड दी है। आजादी के सत्तर साल बाद भी वह बूनियादी सुविधाओं के अभाव में मौत को गले लगाने लगी है। गरीबी, बेकारी, भूकमारी, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, जमाखोरी और अज्ञान से उनको छूटकारा मिलना मुश्किल हो गया है। विषमता, विद्रुपता और विरोधाभास के कोलाहल में उनकी वेदना, चीत्कार और करूण कंदन सत्ता की तिकडमबाजी में किसी को सुनाई नहीं दे रहा। 'अपना काम बनता, बहाड में जाए जनता' वाला रवैया शासक और प्रशासक में आ जाने के कारण सामान्य लोगों को जीवित मृत्यु की यातनाएँ भूगतनी पड रही है।

संसदीय प्रणाली से प्रेरित शासन व्यवस्था में लोक प्रतिनिधि की भूगिका महत्वपूर्ण होती है। इस कारण उन्होंने चुनाव के पहले तथा चुनाव के बाद सरकार तथा सिस्टम के बीच अपनी भूमिका किस तरह की होगी, उसे जनता के सामने स्पष्ट करना चाहिए। अगर किसी ने रखी भी हो तो वह न के बराबर है। लग-भग सभी ने चुनावी जुमलों को बांधते हुए सत्ता को हथियाने का ही प्रयास किया है। उसकी पूर्ति के अभाव में सामान्य लोगों का मोहभंग होने के कारण सरकार के खिलाफ जन-आक्रोश बढने लगा है। यही जन आक्रोश विपक्षियों के लिए अगले चुनाव की पूँजी का काम करने लगा है। सरकार के नाम पर सत्ता प्राप्ति के लिए की जानेवाली तिकडमबाजी, जोड-तोड की राजनीति और गठबंधनों का खेल सामान्य लोगों पर भारी पडने लगा है। जिससे किसी को कुछ लेना देना नहीं है। कृष्णकांत एकलव्य ने 'लोकतंत्र से भोगतंत्र तक' नामक व्यंग में वर्तमान लोकतंत्र की स्थिति और गति पर रोशनी डालते हुए लिखा है – " लोकतंत्र वस्तुतः एक गरीब की मेहर पूरे गॉव की भौजाई है। उसे कहीं भी, घेर कर छेड-छाड कर लेना, मन बहला लेना, ऑख मार देना, उचक कर चोली में झांक लेना, हर छोटे बडे व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। क्योंकि वह एक गरीब की मेहर है, जिसका कोई पूरसंहाल नहीं है।"[1] बस वादें और नारों के बीच वातावरण को गर्म करना और चुनकर आने के बाद अगले पांच साल के लिए हवा हो जाने के लिए लोकतंत्र को प्रयुक्त किया जाने लगा है। आज बेकार, अनपढ और अज्ञानी लोगों को भीडतंत्र में परिवर्तीत करने की व्यवस्था का दूसरा नाम लोकतंत्र बन गया है। अपने स्वार्थ के लिए लोकतंत्र का ऐसा प्रयोग देश को कहॉ ले जा सकता है? इसका अनुमान ही संवेदनशील व्यक्ति के शरीर पर रोंगटे खडे कर देता है।

आज तक जितने भी चुनाव हुए है, उन सब में लोक प्रतिनिधियों ने सेवा के नाम पर सेवा का ऐहसास दिलानेवाले तत्वों को ही रास्तों पर से हटाने का काम किया है। आज उनके जन सेवक के भाव ने आपसी हित संबंध रखनेवालों का विकास, सुख, शांति और समृद्धि करने का अर्थ ग्रहन किया है। इस कारण आज मुठ्ठिभर लोगों का विकास व्यापक समाज की बर्बादी का कारण बन गया है। ऐसी हालात में हमारे लोक प्रतिनिधि अजगर की भॉति पेट को फुलाकर वातानुकूलित हवा खाने में ही देश की प्रगति समझाने लगे है। डॉ. राममनोहर लोहिया दूरदृष्टा व्यक्ति और व्यापक विश्व दृष्टि के थे। उन्होंने समय की नब्ज और लोक प्रतिनिधियों के बढते रूझान को देखते हुए कहा था – " जब कोई सभ्यता एक ही दिशा में अंधाधुंद बडती जाती है, तो वह डायनोसोर की तरह अपने ही मार से नष्ट हो जाती है। उनके अनुसार वर्तमान सभ्यता अधिकतम उत्पादन, अधिकतम उपभोग और अधिकतम विकसित प्रौद्योगिकी के चलते एक ही दिशा में अधिकतम क्षमता प्राप्त करने की ओर मुताबिक है और पूर्ण क्षमता के लक्ष्य को नजरांदाज करती रही हैं, इसीलिए वह अपनी मृत्यु की ओर बढती गई है।"[2] इस पर कोई चिंतन और मंथन करता दिखाई नहीं देता। वर्तमान में इस प्रकार का एकांगी विकास संवेदनशील देशवासियों के चिंता और चिंतन का विषय बन गया है।

किसी भी देश की प्रगति, उन्नति और विकास वहॉ की बुनियादी सुविधाओं पर निर्भर करता है। इसके अभाव में देश और देशवासियों की प्रगति की कल्पना करना मरूस्थल में पानी तलाशने जैसा होता है। उसकी अहमियत को देखते हुए लोकतंत्र में बुनियादी सुविधाओं की प्राप्ति का अधिकार जनता को दिया है और उसकी पूर्ति का दायित्व सरकार पर सौंपा है। ऐसा प्रावधान होने के बावजूद भी आजादी के सत्तर साल तक वें सुविधाएँ कितने

देशवासियों को मिली, यह अनुसंधान का विषय बन गया है। शिक्षा का ही उदाहरण ले लो तो हमें दिखाई देता है कि, सरकार के द्वारा उसके लिए न तो कोई ठोस कदम उठाया जा रहा है, न वर्तमान समय की मॉग के अधार पर शिक्षा व्यवस्था की नई नीतियों को निर्धारित किया जा रहा है। बल्कि उसके उल्टा सरकारी स्कूलों को बंद करके नीजी स्कूलों को चलाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। ऐसे में सीताराम येचुरी ने देश के युवाओं से उम्मीद रखते हुए संसद में कहा था– " ये युवा भारत की सबसे कीमती संपत्ती सिर्फ उसी सूरत में हो सकती है, जब की उन्हें अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ और अच्छे रोजगार के अवसर उपलब्ध हो। इस स्तर को पाने और भारत को उसी ताकत का अहसास कराने के लिए हमें महज भाषणबाजी और कागजी योजनाओं से आगे बढकर उनके कियान्वन पर काम करना होगा और युवाओं पर निवेश करना होगा। सरकार पर इसके लिए दबाव बनाए रखने की जरूरत है, तभी आजादी की 63 वें स्वतंत्रता दिवस पर भारत के सामने मौजूद चुनौतियों से निपटा जा सकेगा।"[3] उनका एक ही कथन वर्तमान में बुनियादी सुविधाओं की स्थिति और गति को स्पष्ट करने के लिए काफी है।

आज के लोकतंत्र को बाजारवादी शक्तियॉ नियंत्रित करने लगी है। जिसकी वजह से राष्टीय संपत्ति का प्रयोग विशिष्ट वर्ग और लोगों के हित में होने लगा है। वर्तमान में उद्योगपति व्यापार में कम राज्य की प्रमुख गतिविधियों पर अधिक लक्ष्य केंद्रित करने लगे है। उन्हें सरकार के अनुकूल व्यवहार अधिक मुनाफा दे रहा है। जिसकी वजह से आए दिन संसाधनों को समेटना, लाइसेन्स प्राप्त करना, एकाधिकार कायम रखने का काम जोरों पर चलने लगा है। आज भारतीय व्यापार नीतियों और नीति निर्धारण को प्रभावित करनेवाली दलालों की लॉबी के अस्तित्व को इराके परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। जिसकी भयावहता और वास्तविकता को व्यक्त करते हुए प्रफुल्ल बिदवाई ने लिखा है– " सरकार पर कार्पोरेट कब्जा होने का खतरा काल्पनिक नहीं हैं। यह एक बढती जा रही प्रकिया है। मीडिया के कुछ वर्ग इसे बहुत बडा विकास मानते है, लेकिन वे इसमें निहित हितों के स्पष्ट संघर्षो को अनदेखा कर देते है। कार्पोरेशन ऐसे व्यापारियों के संकिर्ण लाभ-लोलूप आत्महित का प्रतिनिधित्व करतें हैं, जिसकी संवैधानिक मूल्यों में कोई अस्था नहीं होती। लेकिन राजनीति, उन मूल्यों और सार्वजनिक नैतिकता के लिए एक संघर्ष है। उस व्यापारिक हितों को हावी होने नहीं देना चाहिए।"[4] आज ऐसे दलालों का काम राजनेता तथा सरकारी अफसरों के साथ मैत्रिपूर्ण परिचय बढाने तथा नियमों के साथ विशेष छूट प्राप्त करने के साथ सरकार के विभागों में अफसर के चयन को प्रभावित करने तक बड गया है। देश का अर्थिक बजट जब पेश किया जाता है, तब उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। तेल कंपनी पर से सरकार का नियंत्रण हटना, बाजार और उद्योग को बढावा देने के नाम पर उपकार और अधिभार में दी जानेवाली छूट, तेल, खाद्यपदार्थ और उर्वरक क्षेत्र में दी जानेवाली सबसीडी, जमीन, पानी, बीजली और अन्य संसाधन उपलब्ध कराने का दबाव आदि इसके उत्तम उदाहरण है। आज उनकी दलाली और सरकार में होनेवाली घुसपैट आम लोगों के गले का फंदा बन गई है।

आज लोकतंत्र को देश की सरकार और उसके प्रतिनिधियों ने 'लोकतंत्र, ढोंगतंत्र और भोगतंत्र' नामक तीन पृथक सत्ताओं में परिवर्तीत किया है। जिसके द्वारा ऐन केन प्रकारे सत्ता को स्थापित किया जा रहा है। जिसकी वजह से सामान्य लोग उनकी हर कार्य और किया को लोकतंत्र के ऐनक से देखने लगी है। इस बात का जिक करते हुए कृष्णकांत एकलव्य ने 'लोकतंत्र से भोगतंत्र तक' नामक व्यंग में वर्तमान लोकतंत्र की स्थिति के

बारे में लिखा है– " किन्तु जिस प्रकार कल्पांत के प्रलयकाल में अभिव्यक्ति की इच्छा से प्रेरित परम-ब्रम्हा-विष्णू सृष्टि रचना के लिए स्वयं में ही विघटित होकर रजो, सतो एवं तमो गुण संपन्न क्रमशः ब्रम्हा, विष्णू एवं महेश रूप में तीन पृथक देव सत्ताओं की उत्पत्ति करते है, उसी प्रकार हे राजन निर्वाचन काल में लोकतंत्र भी अपने मूल स्वरूप को विघटित करके क्रमशः लोकतंत्र, ढोंगतंत्र और भोगतंत्र की तीन पृथक सत्ताओं में विभक्त हो जाते है। ये तीनों सत्ताएँ एक-दूसरे से पृथक होते हुए भी एक दूसरे की पूरक सत्ताएँ है।"[5] लोकतंत्र में एन केन प्रकारे सत्ता को प्राप्त करने का लक्ष्य होता है और उसकी पूर्ति करने का काम ढोंगतंत्र के द्वारा संपन्न होता है। सत्ता प्राप्ति की सारी भूमिकाएँ इसके द्वारा ही निर्धारित की जाती है। लोकतंत्र की यह चुनावी प्रकिया 'देवत्व' और 'दैत्य ' शक्तियों के बीच होनेवाले 'देवासूर-संग्राम' की पुनरावृत्ति है। आज ढोंगतंत्र में धनबल और बाहुबल जैसे दो विलक्षण शक्तियों का प्रयोग किया जा रहा है।

लोकतंत्र के सिंधू-मंथन/समुद्र-मंथन से उत्पन्न 'अमृत-घट' का दूसरा नाम 'भोगतंत्र' है। सत्ता रूपी अमृत-घट की प्राप्ति के लिए जोड-तोड, जुगाड और गठागठबंधन होने लगे है। 'संयुक्त घोषणापत्र' निकाले जाने लगे है। संपूर्ण अमृत-घट को पाने के लिए मारामारी करने लगे है। हायकमांड उसका अधिक हिस्सा अपने पास रखते हुए बाकी का हिस्सा सबको थोडा थेडा पिलाकर उन्हें हमेंशा हमेशा के लिए अमर करने लगे है। मंत्री पद की ऊँची कुर्चीयाँ, अलिशान बंगले, लक्जरी एअर कन्डीशन्ड गाडियाँ, लाल बत्तियाँ, करोडों की मासिक पगारें और अन्य भत्ते, अरबों के घपले घोटालों की परोक्ष सुविधाओं का रसपान जनता के धन से करने लगे है। इसमें ही देश का अमृत-कलश खाली हो जाने के कारण कालकलूट रूपी विष सामान्य लोगों के लिए बचने लगा है। जिसे पिचले सत्तर साल से देश की अनपढ, गरीब, दलित, आदिवासी जनता बेबस और लाचार होकर पीती आ रही है। वर्तमान की समस्याओं की यही जड है। यह देशवासियों के लिए लोकतंत्र एक ऐसा झूनझूना बन गया है, जिसे सत्तर साल से जब चाहे तब अपने अपने मूड के अनुसार लोक प्रतिनिधि बजाते आ रहें है और सामान्य जनता बच्चों की तरह दंग होकर उसे सुनने लगी है। इस प्रकार की वास्तविकताओं से धृतराष्ट को अवगत कराते हुए संजय वर्तमान समाज की बिमारियों को बताता है– " यह शिक्षा, असमानता, गरीबी, भूखमारी, बेरोजगारी, बीमारी जैसी विसंगति और विद्रुपताएँ इसी लोकतांत्रिक समुद्र मंथन से प्राप्त कालकलूट जन्य विषाणुओं से संक्रमित नाना व्याधियाँ है।"[6] इस कारण उनका सुनाने का और हमारा सुनने का काम रोज का बन गया है। अपने लोकतांत्रिक देश में अभी तक बुनियादी सुविधाओं को प्राप्त करने के चक्कर में किसान और मजदूरों को आत्महत्या करनी पडती है। वहाँ मेटो, मोनो रेल, मॉल और औद्योगिकीकरण को गति कैसे दी जाती है? रोजगार और सुविधा के नाम पर बडे बडे प्रकल्प खडे करना और बाद में पीचले दरवाजे से मशीनों को लाकर एक एक करके निकाल देने का खेल सभी जानते है। इसका मतलब यह कदापि यह नहीं है कि, हम विकास विरोधी है। हमारा कहना सिर्फ इतना है कि, पहले देशवासियों की बुनियादी सुविधाओं को निपटाने के बाद ऐसी प्रगति पर हमें विचार करना चाहिए। अभाव, अभास, संभ्रम और संशय सादृश्य स्थिति में नहीं। कूल मिलाकर हम कह सकते है कि, वर्तमान लोकतंत्र में सरकार और उनके प्रतिनिधियों की कुछ करने की मानसिकता नहीं है और हमारी कुंभकर्ण की नींद से उठने की स्थिति नहीं है। ऐसे में अपने लोकतांत्रिक देश के अंतर्गत उसका मसिहा बनने का नाटक खूब रंग जमानेवाला है।

संदर्भ सूचि

1. कृष्णकांत एकलव्य, लोकतंत्र से भोगतंत्र तक, किताब घर प्रकाशन, 24/4855, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली, 110 002, प्रथम संस्करण 2013, पृ.क. 46.
2. लोकमत समाचार, रविवार, 22 मार्च, 2009, औरंगाबाद.
3. लोकमत समाचार, रविवार, 24 अगस्त, 2009, औरंगाबाद.
4. लोकमत समाचार, रविवार, 22 अगस्त, 2009, औरंगाबाद.
5. कृष्णकांत एकलव्य, लोकतंत्र से भोगतंत्र तक, किताब घर प्रकाशन, 24/4855, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली, 110 002, प्रथम संस्करण 2013, पृ.क. 47.
6. कृष्णकांत एकलव्य, लोकतंत्र से भोगतंत्र तक, किताब घर प्रकाशन, 24/4855, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली, 110 002, प्रथम संस्करण 2013, पृ.क. 53.

VOLUME - VII, ISSUE - IV - OCTOBER - DECEMBER - 2018
AJANTA - ISSN 2277 - 5730 -IMPACT FACTOR - 5.5 (www.sjifactor.com)

११. साहित्य और विज्ञानकथा

डॉ. बी. आर. नळे
हिंदी विभाग, सुंदरराव सोळंके महाविद्याल, माजलगाव.

वर्तमान में विज्ञान प्रौद्योगिकी की प्रत्येक खोज एवं अविष्कार ने मानवीय जीवन, क्रियाकलाप, व्यवहार और आपसी संबंधों को काफी प्रभावित करना शुरू किया है। जिसकी वजह से एक तरफ मानीय परिवेश, आचार विचार, व्यवहार, रहन सहन में अमूल चूल परिवर्तन आने लगा है, तो दूसरी तरफ नैतिक मूल्यों की कमी की वजह से तकनीकी अविष्कारों का मनमाने तरिके से प्रयोग ने मानवीय, प्राकृतिक तथा पर्यावरणीय समस्या को दिन ब दिन उग्र बनाना शुरू किया है। मनुष्य में आंतरिक खोखलापन और उपर से दिखावटीपन आ जाने के कारण आज समुची मानव जाति की स्थिति 'तुफानों के बीच घिरे जहाज' की तरह बनती जा रही है। आज विवेक और नैतिक मूल्यों के अभाव की वजह से विज्ञान प्रौद्योगिकी की प्रगति को मानव हजम कर नहीं पा रहा है।

पहले विचित्र और विरोधाभासोंवाली परिस्थितियों की अभिव्यक्ति के माध्यम से मानवी जीवन में आयी जडता, खोखलापन, दिखावटीपन आदि को दूर करते हुए मानवीय चेतना को विकसित, पल्लवित एवं शैक्षिक बनाने का काम साहित्य खूबी से करता था। लेकिन वर्तमान में विज्ञान प्रैद्योगिकी की प्रगति के चलते समय की कमी, मानवीय जडता, संश्लिष्ठता एवं जटिलता के चलते साहित्य का प्रभाव भी क्षीन होता नजर आ रहा है। लेकिन इतिहास गवा है कि, जब जब साहित्य को जडता और शून्यता ने व्यापने की कोशिश की तब तब साहित्यकारों ने अपने आलस्य को त्यागकर मानवीय परिवर्तन के साथ सामाजिक प्रभावों, परिणामों और परिवर्तनों को पूरी निष्ठा, लगन, ईमानदारी और प्रमाणिकता के साथ अभिव्यक्त करने के लिए नयीं नयीं विधाओं को विकसित किया है। इस कारण हमें मानीय विकास के समानान्तर साहित्यिक विकास के 'पगचिन्ह' दिखाई देते है। इसी विकास के चलते 'विज्ञानकथा' साहित्य ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व ग्रहण करना शुरू किया है। आरंभ में इस विधा को पाश्चात्य देशों में 'साइन्टिफिक्शन' कहा जाता था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इसे 'साइन्स फिक्शन' अर्थात 'विज्ञानकथा साहित्य' कहा जाने लगा है। आज इसे 'स्पेक्युलेटिव्ह फिक्शन' और हिंदी में 'अनुमानात्मक कथा साहित्य' कहा जाने लगा है।

हम देखते है कि, विज्ञान और साहित्य दोनों ज्ञान की शाखाएँ है और ज्ञान हमेंशा एकसंघ होता है। इस अर्थ से देखा जाए तो साहित्य के अंतर्गत विज्ञान और विज्ञान के अंतर्गत साहित्य का समावेश होता है। साहित्य और विज्ञान दोनों मानव कल्याण से प्रेरित होकर मानव कल्याण के प्रति समर्पित है। भले ही दोनों का विश्व अर्थात क्षेत्र अलग अलग हो लेकिन दोनों का उद्देश एक ही है। दोनों संसार में जो इंद्रियानुभूत करने जैसा है, उसे समझने की कोशिश करते है। इस प्रकार के विज्ञान और साहित्य के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए युवा विज्ञान कथाकार 'मनीष मोहन गोरे' और 'अरविंद मिश्र' लिखते हैं – "संसार में जो कुछ भी इंद्रियानुभूत है, उसे सूझाने के दो ही मार्ग है– एक अर्न्तज्ञान का और दूसरा विज्ञान/बहिर्ज्ञान का। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, ज्ञान और विज्ञान अलग अलग है। विज्ञान द्वारा समुंचित सृष्टि को जानने तथा समझने के लिए ज्ञान का होना परम

256

Scanned by CamScanner

आवश्यक है। जिस प्रकार ज्ञान और विज्ञान को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, ठीक वैसे ही विज्ञान और साहित्य भी एक दूसरे पर आश्रित होते है, एक अनिवार्य शर्त के रूप में।"[1] क्या व्यक्ति तथा मानवजाति के संपूर्ण विकास के लिए इस प्रकार के समुचित ज्ञान की आवश्यकता नहीं है?

साहित्यकार और वैज्ञानिक इस तरह अपने अपने क्षेत्रों के रहस्यों को उद्घाटित करने का काम करते आए है। दोनों की विवेचना पद्धति का ढंग और विषय की भिन्नता को देखते हुए हम दोनों का रिश्ता नाता तोडकर उन्हें स्वतंत्र रूप में स्थापित करने का दूराग्रह करने लगे है। इस प्रकार की दूराग्रहीता और हटधर्मिता की वृत्ति दानों के बीच में सामानांतर बहनेवाली मानवीय मूल्य की कोमल धारा को देख नहीं पा रही। साहित्य के लोग विज्ञान की उपेक्षा और विज्ञान के लोगों का साहित्य से परहेज करने का कारण और क्या हो सकता है? इस लिए हमें अपनी दृष्टि का दायरा बडाना होगा। इस प्रकार के साहित्यकार और विज्ञान के कार्य से परिचित कराते हुए हिंदी के श्रेष्ठ विज्ञान कथाकार 'मनीष मोहन गोरे' और 'अरविंद मिश्र' लिखते हैं – "साहित्यकार और वैज्ञानिक का लक्ष्य, एक होता है – सृष्टि के रहस्यों को उद्घाटित करना तथा जानना। फर्क होता है सिर्फ दोनों की विवेचना और अभिव्यक्ति के तरिकों में। एक का मार्ग भाव परक होता है तो दूसरे का मार्ग बुद्धि परक। वे अपने अपने मार्ग पर अलग अलग ढंग से एक ही मंजिल को प्राप्त करने का उद्यम करते दिखते है।"[2] हमें समझना चाहिए कि, भाव और बुद्धि के उचित अनुपात का नाम 'विवके' होता है। जरूरत से अधिक भावूकता तथा बुद्धि का होना खतरों से खाली नहीं होता। इस लिए शिक्षा के माध्यम से समुचित ज्ञान की शिक्षा पर हमें बल देने का प्रयास करना चाहिए। संपूर्ण विश्व एक है। उसी विश्व के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करना हमारी प्रधानता होनी चाहिए। इस प्रकार की प्रधानता को 'आर. ए. स्कॉट जेम्स' स्पष्ट करते हुए लिखते है– "कला का विश्व अलग और सत्य का विश्व अलग, ऐसा नहीं है। संपूर्ण विश्व एक ही है, भले ही कलाकार, वैज्ञानिक और अध्यापक के उसकी तरफ जाने का मार्ग अलग अलग हो।"[3] इस लिए सभी ने हर काल के संपूर्ण सत्य को जानने, समझाने और आत्मसात करते हुए उचित व्यवहार करने का प्रयास करना चाहिए। विज्ञानकथा इस प्रकार के व्यवहार और आचरण के प्रति कटिबद्ध दिखाई देती है।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी खोज एवं अविष्कारों ने मनुष्य जीवन पूर्णतः विज्ञानमय हो गया है। जिसकी वजह से हमारे अचार विचार, व्यवहार और जीवन जीने के तौर तरीके बदल रहे है। साहित्य का प्राणतत्व जीवन पर भाष्य करना है। लेकिन वर्तमान विज्ञानमय जीवन पर भाष्य करने के पहले विज्ञान का अकलन होना बहुत महत्वपूर्ण है। साहित्य वैज्ञानिक प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता है? इस प्रकार के विचारों को अधिक स्पष्ट करती हुई सुश्री 'विनीता सिंघल' लिखती है– "साहित्यकार और वैज्ञानिक दोनों का लक्ष्य सदैव एक ही रहा है– पहले सृष्टि के रहस्यों को जानना और फिर उसे सारी दुनिया से परिचित करना। बस अंतर केवल अभिव्यक्ति के माध्यमों में होता है। आज विज्ञान और साहित्य का संबंध पहले से कहीं अधिक प्रगाढ और आवश्यक हो गया है। आज का युग विज्ञान का युग है और हमारा जीवन पूरी तरह विज्ञानमय हो गया है। ऐसे में सामाजिक साहित्य विज्ञान के प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता है?"[4] मानव समाज की प्रगति के लिए अभिव्यक्ति के माध्यम नहीं उसके आशय की आवश्यकता होती है। इस लिए साहित्य और विज्ञान को पृथक पृथक रूप में देखने की बजाय समुचित रूप से उसके अविष्कार को देखकर समझाने की आवश्यकता है। आंतरिक परिपूर्णता और बाहरी समृद्धि ही मानव समाज को

Scanned by CamScanner

जीवन जीने की प्रेरणा, बल एवं सामर्थ्य देगी। जिसकी आज के विवेकहीनता, दिशाहीनता और मूल्यहीनता की ओर जा रही नयी पीढी को आवश्यकता है। विज्ञानकथा इस प्रकार की आवश्यकता को पूरी करती नजर आ रही है।

विज्ञान प्रौद्योगिकी के प्रभाव से दुनिया बदल रही है और बदली हुई दुनिया को समझाने के लिए हमें विज्ञान के साथ समाज विज्ञान को भी समझाना चाहिए। दोनों एक सिक्के के दो पहलू है। पहले के बीगर दूसरे का तथा दूसरे के बीगर पहले का अस्तित्व खतरें में आ जाता है। आज मानवीय अस्तित्व का खतरा संपूर्ण मानव समाज को सताने लगा है। तकनीकी अविष्कारों ने इच्छा, अकांक्षा और महत्वकांक्षाओं का तुफान निर्माण किया है। उसी तुफानों से घिरकर आज का मानव तकनीकी अविष्कारों का स्वार्थी बनकर मनमाफिक ढंग से प्रयोग एवं इस्तेमाल करने लगा है। पैसा, प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा, स्पर्धा में सबसे आगे रहने की इच्छा और दुनियाभर के सुखों को उपभोगने की लालसा मनुष्य को पशुता की ओर ले जा रही है। इस कारण वर्तमान युग की सबसे बडी समस्या मनुष्य की खोती संवेदना बन गई है। ऐसे आंतरिक खोखलेपन से घिरा आदमी कब तक खैर मना सकता है? यह भी प्रश्न है। इन सभी का कारण वैज्ञानिक समझ और मूल्य दृष्टि का अभाव है। इसलिए आज विज्ञान और साहित्य का एक साथ होना, पूरक बनना जरूरी ही नहीं अनिवार्य हो गया है। इस प्रकार की समन्वयवादी दृष्टि और भावना ही इस सुंदर ग्रह तथा ग्रहवासियों को सभी प्रकार की समस्याओं से मुक्ति दिला सकती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो विज्ञानकथा साहित्य के अंतर्गत भाषा, साहित्य, समाज, संस्कृति और सृष्टि का विकास, विस्तार और पूर्णता के मानदण्ड दिखाई देते है। जो हमारी धरोहर को अधिक मजबूत कर सकती है।

इसलिए आनेवाले कल की आहटें सुनकर वैज्ञानिक और साहित्यकार दानों को मिलकर लोकप्रिय एवं रोचक विज्ञानकथा साहित्य का सृजन करना चाहिए, साथ ही ऐसे साहित्य सृजन के लिए युवा विज्ञान कथाकारों को बढावा भी देना चाहिए। साहित्यकार और वैज्ञानिकों की भूमिका को स्पष्ट करती हुई 'शेफाली भटनागर' लिखती है– "विज्ञान और साहित्यकार दोनों समाज, मानव जीवन के अति आवश्यक अंग है। अतः दोनों अविरल धाराऐं होती हुई भी मानव जीवन की आवश्यकता हेतु मिलती है, फिर अलग हो जाती है और पुनः मिलती है। इस लिए विज्ञान को किसी भी रूप में समाज, साहित्य या कला से अलग नहीं किया जा सकता। इस दानों क्षेत्रों को एक दूसरे से जोडा जाना अति आवश्यक है। लोकप्रिय एवं रोचक विज्ञान लेखन के लिए वैज्ञानिक और साहित्यकारों, दोनों की आवश्यकता है।"[5] शेफाली भटनागर के सभी विचारों से तो मैं सहमत नहीं हूँ, लेकिन उनके अंतिम विचार मेरी दृष्टि में महत्वपूर्ण है। जेष्ठ वैज्ञानिक 'डॉ. जयंत विष्णू नारलीकर' तो अपनी मैलिक रचनाओं की भूमिकाओं में ही वैज्ञानिक और साहित्यकार को विज्ञानकथा साहित्य लिखने की अपील कर रहे है। उन्होंने कल की आहटें सुनी हैं, उसी को लोगों तक पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं। इस तरह प्रेरणा, बल तथा सामर्थ्य के साथ लोककल्याण की भावनाओं से प्रेरित होकर विज्ञानकथा का सृजन भारतीय भाषाओं में शुरू हुआ है। इस कारण इस कालखण्ड को विज्ञानकथा साहित्य का 'स्वर्णकाल' कहना उचित होगा।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, आज के वैज्ञानिक युग में रहते हुए भी देश की लगभग सत्तर प्रतिशत जनता गरीब, अज्ञान, अंधश्रद्धा, अंधविश्वास, रूढिवादिता, अर्न्तद्वन्द्व और विरोधाभासों के बीच अपना जीवन बीताने के लिए मजबूर हो रही है। इसके कारण बुआ बाबाओं ने अध्यात्म के नाम पर खुलेआम भोली भाली जनता को लूटना शुरू किया है। ऐसे लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक समझा विकसित करने का काम

Scanned by CamScanner

विज्ञानकथा कर रही है। आज विज्ञान तकनीकी की उपलब्धियों को तथा अविष्कारों को देखकर विज्ञान के प्रति अधिकांश लोगों के मन में डर, भय और संताप का वातावरण निर्माण हो रहा है। उन्हें विज्ञान के लाभ कम और हानी जादा नजर आने लगी है। ऐसे लोगों के मन का डर और भय दूर करते हुए विज्ञान मानव को क्या दे रहा है तथा विज्ञान का सही इस्तेमाल हमें क्या दे सकता है? इसका विवेचन प्रस्तुत करने लगी है। विज्ञान तकनीकी से विकसित साधान, उपकरण, सेवा और सुविधाएँ तो हमारे हाथ आ गई है, लेकिन उसके सही ईस्तेमाल की बुद्धि अर्थात विवके विकसित हो नहीं पाया। इस कारण आज उन सभी का उपयोग पद, प्रतिष्ठा, पैसा, प्रसिद्धि और लोगों पर धाक जमाने तथा लूटने के लिए मनमाफिक ढंग से किया जा रहा है। उसके सही इस्तेमाल की विवके बुद्धि को. विकसित करने का काम विज्ञानकथा करने लगी है। साथ ही वैज्ञानिक संकल्पना, वैज्ञानिक तथ्य, सार्वत्रिक नियम और समकालीन मान्यताओं का साहित्यिक तत्वों के माध्यम से सरल, सरस और रोचक भाषा शैली में प्रचार प्रसार करने लगी है। भविष्य में आनेवाली समस्याओं को दूर करने का दायित्व अपने कंधों पर लेकर उसे निभाती नजर आ रही है। वैज्ञानिक विकास के सामानान्तर समुची मानवीयता का विकास करने की दिशा में कटिबद्ध दिखाई दे रही है। इसमें ही मानवता धर्म, विश्वधर्म, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा भी है और कल्याण भी। आनेवाले कुछ ही दिनों में विज्ञानकथा का उज्वल भविष्य उभरकर हमारे सामने आ जायेगा, इसी उम्मीद के साथ....

संदर्भ सुचि

1. मनीष मोहन गोरे/अरविंद मिश्र, विज्ञानकथा का सफर, मंजुली प्रकाशन, नयीं दिल्ली – 110 022, प्रथम संस्करण – 2000, पृ.क. 32.
2. मनीष मोहन गोरे/अरविंद मिश्र, विज्ञानकथा का सफर, मंजुली प्रकाशन, नयीं दिल्ली – 110 022, प्रथम संस्करण – 2000, पृ.क. 33.
3. डॉ. मुरलीधर जावडेकर, महाराष्टातील वैज्ञानिक कांति, मुरलीधर जावडेकर साहित्यकला प्रतिष्ठान पुणे, द्वितीय आवृत्ति – 2012, पृ.क. 16.
4. संपा. डॉ. सुरेश गौतम/डॉ. वीना गौतम, भारतीय साहित्य कोश, खंड चार, संजय प्रकाशन, नयीं दिल्ली –110 002, संस्करण – 2012, पृ.क. 183.
5. संपा. डॉ. सुरेश गौतम/डॉ. वीना गौतम, भारतीय साहित्य कोश, खंड चार, संजय प्रकाशन, नयीं दिल्ली –110 002, संस्करण – 2012, पृ.क. 184.

'RESEARCH JOURNEY' International E- Research Journal
Impact Factor - (SJIF) - 6.261, (CIF) - 3.452(2015), (GIF)-0.676 (2013)
Special Issue 105 (A)- हिंदी साहित्य और सिनेमा
UGC Approved Journal
ISSN : 2348-7143
February-2019

हिंदी–मराठी साहित्य और सिनेमा

पाटील सीमा दिलिपराव
सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय,
माजलगाव, जिला बीड 431131
मेल - deshmukhsantosh76@gmail.com
डॉ. बी. आर. नळे
फोन. 9067164111/9421989586

इतिहास के पन्ने पलटकर जब हम देखतें है, तब हमें पता चलता है कि, भारतीय समाज के निर्माण में साहित्य और सिनेमा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जिसने स्वतंत्रता आन्दोलनों से लेकर आज तक की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक क्षेत्र में छाई विसंगति, विरोधाभास, विभ्रम और संशय – सादृश्य स्थिति के बीच जीवन जीने की विवशताओं से भारतीय समाज को बाहर निकालते हूए उनके जीवन को स्वस्थ, सुंदर और परिपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। उसकी आम आदमी के प्रति दिखनेवाली सामाजिक प्रतिबद्धता और सरोकारों ने सामाजिक – आर्थिक – राजनीतिक परिवर्तनों ने नए पर्व समाज में लाए है। साथ ही सत्ता की निरांकुशता और प्रशासन की मोहांधता पर प्रहार करते हुए लोगों के हित में काम करने के लिए प्रेरित करने का श्रेय भी हम साहित्य और सिनेमा को ही दे सकते है। इस दृष्टि से देखा जाए तो साहित्य और सिनेमा की निर्मिती सामाजिक विषमताओं के बीच होती है। उन विषमताओं का निराकरन करने के उनकी समर्पित भावना दिखाई देती है।

आज वैश्विक स्तर पर देखा जाए तो हमें देखने को मिलता है कि सभी भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य पर फिल्मांकन होने लगा है। क्योंकि समय के साथ फिल्म का असर साहित्य से ज्यादा समाज पर होने लगा है। वह एक साथ दिल, दिमाग और मानवीय व्यवहारों पर असर करने लगा है। दुसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि आज वाचन संस्कति का लोप और मनोरंजन के प्रति बढ़ती मानसिकता की वजह से श्रेष्ठ रचनाओं का असर समाज पर न के बराबर होने लगा है। ऐसी रचनाओ के आशय, विषय और सामाजिक प्रश्नों को सिनेमा के माध्यम से समाज के सामने लाने का कम फिल्म निर्देशक करने लगे है। उनका उद्देश पूँजी कमाने का होने के बावजुद सामाजिक दायीत्व का निर्वाह उसमें हमें दिखाई देता है।

आज का युग वैज्ञानिक युग कहलाया जाता है। फिर भी हमारे देश में अज्ञान, अंधश्रद्धा, अंधविश्वास, रूढी और परंपराओं ने जड़े जमाई हुई है। जब तक हम उसपर प्रहार नहीं करते, तब तक हम अपने जीवन में सुखी हो नहीं सकते। इस बात को ध्यान में रखते हुए समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण लाने के उद्देश तथा धर्मनिरपेक्ष और नैतिक मूल्यों से युक्त समाज का निर्माण करने के दायित्व से प्रेरित साहित्य का सृजन किया जाने लगा है। आज नैतिक मुल्यों का पतन ही हमारी अधिकांश समस्याओं का कारण बन गया है। इसे साहित्यकार और फिल्मकारों ने सामाजिक जीवन में रेखांकित किया है। जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य और

Scanned by CamScanner

'RESEARCH JOURNEY' International E- Research Journal
Impact Factor - (SJIF) - 6.261, (CIF) - 3.452(2015), (GIF)-0.676 (2013)
Special Issue 105 (A)- हिंदी साहित्य और सिनेमा
UGC Approved Journal
ISSN : 2348-7143
February-2019

[illegible] में हो रही है। भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, सूदखोरी, स्वैराचार, अनाचार, भाई–भतीजावाद, [illegible] हत्या, बलात्कार, आत्महत्या, जमाखोरी आदि को इसके संदर्भ में देखा जा सकता है।

संवेदना का लोप और बढ़ती महत्त्वकांक्षा ने व्यक्ति परिवार, समाज, और प्रांतों में कई प्रकार के विवादों को खडा करके हमारी एकता, अखंडता, समानता, निरपेक्षता आदि को तोडने का पसारा शुरू किया है। संवेदनशील व्यक्ति क्या इसे कभी समझ नहीं सकता ? साहित्यकार ने उपर्युक्त प्रश्नों को अपने साहित्य के माध्यम से उठाया है और फिल्म निर्देशकों ने उसे अपनी कथा, पटकथा और संवादों के माध्यम से दर्शकों के सामने उन परिवेश और परिस्थितियों के साथ जीवीत करके लोगों के सामने प्रस्तुत किया है। जिसकी वजह से आज समाज में उपर्युक्त समस्याओं को लेकर चिंतन और मंथन होने लगा है। अनेक कार्यकर्ताओं के द्वारा ठोस उपाय किए जा रहे हैं। ऐसे समाज को दिशा देनेवाले सामाजिक परिवर्तन की नींव रखनेवाले तथा सामाजिक परिवर्तन को बल देनेवाले हिंदी – मराठी की कुछ रचना और उसपर बनी सिनेमाओं को हम निम्न प्रकार से देख सकते है।

1947 में भारत देश के विभाजन के बाद 1972 में भिष्म साहनी ने अपने उपन्यास 'तमस' में तात्कालिक परिस्थिती को रेखांकित किया। उस समय विभाजन के दौरान हुई दंगल, मारकाट, हिंसा इन सब में पिसे लोगों की त्रासदी का इतिहास इन्होंने लिखा। उनके इस उपन्यास पर 1988 में गोविंद निहलानी ने 'तमस' नामक फिल्म बनाई। साहित्य सम्राट मुंशी प्रेमचंद की 'सद्गती' और 'शतरंज के खिलाडी' नामक कृतियों पर क्रमशः इसी नाम से फिल्मकार सत्यजीत रे ने 1981 और 1977 में फिल्मांकन किया है। इसमें कृषक वर्ग की समस्याओं और राजनीतिक समस्याओं का चित्रांकण किया है। धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सुरज का सॉतवा घोडा' पर इसी नाम से 1992 में श्याम बेनेगल ने फिल्म बनाई। उदयप्रकाश की लम्बी कहानी 'मोहनदास' पर मजहर कामरान ने 2008 में इसी नाम से फिल्म बनाई। जिसमें युवकों की समस्याओं पर चित्रांकण किया है। प्रेम त्रिकोण पर आधारित 'डाक बंगला' उपन्यास पर 1974 में गिरीष रंजन ने फिल्म बनाई। शैवाल की 'कालसुत्र' कहानी पर प्रकाश झा ने 1985 में 'दामुल' नामक फिल्म बनाई। जिसमें दलीत यर्थात और नारी की समस्याओं का चित्रण किया है। इस प्रकार से हिंदी भाषी उपन्यासों का हिंदी में ही फिल्मांकन किया गया है।

अन्य भाषा उपन्यासों में पंजाबी, बंगाली और अंग्रेजी भाषा के उपन्यासों पर भी फिल्मांकन किया है। अमृता प्रीतम के पंजाबी उपन्यास 'पींजर' में अपहरण की हुई युवती के साहस और समझदारी का रेखांकन किया है, जिसपर चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने 2003 में इसी नाम से फिल्म का निर्माण किया। बॅटवारे के दौरान हुए सामाजिक उथल–पुथल, प्यार और नफरत पर बनी इस फिल्म को दर्शकों ने बहुत सराहा। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'काशी का अस्सी' इस उपन्यास पर 2015 में चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने 'मोहल्ला अस्सी' नाम से फिल्म बनाई। जिसमें काशी तट पर होनेवाले धार्मिक विधियों पर व्यंग किया है। बापसी सिद्वी के अंग्रेजी उपन्यास 'क्रैकिंग इंडिया' पर आधारित दिपा मेहता ने 1947 में 'अर्थ' नामक फिल्म का निर्माण किया। सेक्सपियर के नाटक 'मैकबेथ' पर आधारित विशाल भारद्वाज ने 'मकबूल' नामक फिल्म बनाई। आतंकवाद का भयावह चित्रण करती फिल्म 'हैदर' यह अंग्रेजी उपन्यास 'हेमलेट' पर

Scanned by CamScanner

आधारित थी। युवाओं के पसंदीदा लेखक चेतन भगत के उपन्यास 'फाइव पॉइंट समवन' पर 'थ्री इडियट' फिल्म बनी। जिसमें बडे ही मनोरंजक तरिके से सिर्फ नौकरी पाने हेतू शिक्षा लेने पर करारा व्यंग किया है। जिसे दर्शकों ने बेहद पसंद किया है।

मराठी भाषा के साहित्य और उसपर आधारित फिल्मों की भी लंबी श्रृंखला है। जिनमें व.पु.काळे की 'पार्टनर' नामक रचना पर आधारित समीर रमेश सुर्वे ने 'श्री पार्टनर' नामक 2014 में फिल्म का निर्माण किया। जिसमें ईमानदारी और सामाजिक दायरों में रहनेवाली स्त्री की त्रासदी का चित्रण किया है। सुहास शिरवाडर की रचना 'दुनियादारी' पर इसी नाम से संजय जाधव ने 2013 में फिल्म बनाई। जेष्ठ समाज सेवक और समाज सुधारक डॉ. प्रकाश बाबा आमटे की 'प्रकाशवाटा' नामक किताब पर 'डॉ. प्रकाश बाबा आमटे' नाम की फिल्म बनाई है। जिसमें उनका गरिबों के प्रति लगाव, त्याग और समाजसेवा का चित्रण समाज में अपनी अलग पहचान बनाना है। जो सारे देश को प्रेरणादायी साबीत हुई है। राजनितिक उथल – पुथल पर आधारित अरूण साधु की रचना 'सिंहासन' पर इसी नाम से जब्बार पटेल ने फिल्म का निर्माण किया है। गॉव – गॉव जाकर अपनी लोककला को प्रस्तुत करनेवाले नायक की व्यथा का रेखांकन करनेवाली डॉ. आनंद यादव की रचना 'नटरंग' पर इसी नाम से 2011 में रवी जाधव ने फिल्म बनाई। उषा दातार की रचना 'काकस्पर्श' पर महेश मांजरेकर ने इसी नाम 2012 में फिल्म बनाई। जिसमें अंधश्रद्धा पर व्यंग किया है। बंगाली उपन्यासकार शरतचंद्र के उपन्यास 'देवदास' पर आधारित तीन फिल्मों का निर्माण हुआ है।

इस तरह से साहित्य पर फिल्मांकन की सुचि लंबी है। एक फिल्मकार की दृष्टि से फिल्में हमेशा चरित्रप्रधान होती हैं। वो पहले उसे साहित्यिक कृती की आत्मा और फिर उसके चरित्र को देखता है। जितनी गहराई से वह उस कृती को देखता है, उतना ही खजिना उसे नजर आता है। वह उस कृती में निहित सार को अपने फिल्म में समा लेता है। चार सौ पृष्ठों की किताब को महज तीन घंटों में दर्शकों के मन में उतारणा यह आसान काम नहीं है। इसलिए वह उसे थोडा – बहुत कॉट–छॉटकर सकारात्मक कल्पना के माध्यम से उस कृती का सार लेकर उसपर फिल्मांकन करने का काम करता है।

साहित्यिक कृतियों पर फिल्मों को देखें तो दर्शक उसमें निहित जीवन की तुलना अपने जीवन से करता है। उसे वह वैसा नजर आता है जैसा वह जीता है। साहित्यिक कृतियों पर फिल्मांकन के प्रभाव, उसकी व्यापकता और शक्ति को देखकर यह जरूरी हो जाता है कि, हम उसपर गंभीरता से विचार करें। साहित्य और सिनेमा दोनों समाज के राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक समस्याओं पर प्रहार करके उसे समाज के सम्मुख लाकर समाज में कांतीकारी बदलाव लाने का प्रयास कर रहा है। इसलिए इन दोनों का समाज और हमारे व्यक्तिगत जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये समाज का आईना है। एक दर्जेदार साहित्य ही एक दर्जेदार फिल्म का निर्माण करता है। जिसके माध्यम से एक दर्जेदार समाज का निर्माण हो सकता है। इसिलिए हमें इसपर ध्यान देते हुए वैश्विक साहित्यिक कृतियों पर फिल्मांकन को प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए। मनोरंजन के साथ–साथ उसमें निहित ज्ञान को अपने अंदर ग्रहण करके समाज में व्याप्त समस्याओं का डटकर सामना करने की सिख को

...अवसाद करने का प्रयास करते रहना चाहिए। सभी साहित्यिक कृतियों पर फिल्मांकन का मूल हेतु सफल होगा।

सहायक ग्रंथ :

1. एन.आर.नारायणमूर्ति, बेहतर भारत बेहतर दुनिया, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 2015.
2. सतीश जकातदार, इतिकथा सिनेमाची, अक्षर प्रकाशन, मुंबई – प्रथम प्रकाशन सितंबर 2012.
3. राकेश आनंद बक्षी, अनुवाद – अंजली ठाकूर, डायरेक्टर्स डायरीज, रिया पब्लिकेशन, कोल्हापुर – प्रथम प्रकाशन अगस्त 2016.
4. अशोक शिवडे, चंदेरी सोनेरी, रिया पब्लिकेशन, कोल्हापुर – प्रथम प्रकाशन अगस्त 2016.
5. डॉ. मायाप्रकाश पांडे, समकालीन साहित्यबाजार और मिडिया, चिंतन प्रकाशन, कानपुर – प्रथम प्रकाशन 2014.
6. काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली – प्रथम प्रकाशन 15 फरवरी 2004.

Scanned by CamScanner

'लौटना नहीं है'
(स्त्री विमर्श के संदर्भ में)

अमृता अनिलराव भोर
शोध छात्रा
डॉ. बाबासाहब आंबेडकर मराठवाडा विद्यापीठ औरंगाबाद

डॉ. बी. आर. गवळे
शोध निर्देशक सहायक प्राध्यापक
सुंदरलाल सोळंके महाविद्यालय माजलगाव

==

इन्हीं दिनों में आया कैलाश बनवासी का उपन्यास 'लौटना नहीं है' यह स्त्री जीवन के संघर्ष पर आधारित कृति है। उपन्यास की शोषित निम्नवर्गीय परिवार तथा उस परिवार की लड़की के संघर्ष की कहानी है। इस उपन्यास की नायिका (गौरी) पहले तो उस पर होनेवाले अन्याय अत्याचार को माता–पिता और सामाजिक बदनामी की वजह से सह लेती है। लेकिन बाद में वह अन्याय अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाती है। उसका विरोध करती है। यह उपन्यास पितृसत्तात्मक मूल्यों से ग्रस्त समाज का विरोध करता है। साथ ही स्त्री जीवन को नरक बनानेवाले उन सारी रूढ़ियों–मान्यताओं का विरोध करता है।

पहले तो भारतीय समाज और साहित्य में एक समय ऐसा था कि स्त्री पुरूष दोनों का भी महत्व था । धरती पर कुदरत ने स्त्री और पुरूष दोनो को एक समान बुध्दि, शक्ती, और सामर्थ्य के साथ पैदा किया है। जीवन रूपी गाडी को आगे बढाने में दोनो की भूमिका महत्वपूर्ण है। दोनों एक दूसरे के पूरक है। एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जहाँ पुरूषों को रक्षा का माध्यम माना गया वहीं नारी को दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, आदि के रूप में प्रतिष्ठित किया था। पुरूष के साथ–साथ स्त्री का भी आदर और सम्मान हो रहा था। जिसकी वजह से समय के साथ मध्य युग तक आते–आते स्त्री जीवन के व्यवहार में फिर एक बार बदलाव आ गया।
इस काल में पुरूष प्रधान संस्कृती अपने महत्व एवं अधिकारों को बढ़ाने के लिए उस पर बंधनों का फाँस कसना शुरू किया। जिसकी वजह से जीवन और व्यवहार का महत्व कम होता गया। और पुरूष प्रधानता का चेहरा समाज पर हावी होता रहा । आंतरिक प और सहते जाने की नियती से ग्रस्त स्त्री को उस दलदल से बाहर निकालने की बजाय शासन, शयन, और श्रृंगार में मस्त रहने की पुरूष की मानसिकता उसमें ही मशगूल रही पुरूष प्रधानता के दोहरे व्यवहार (देवीयां के आड मे से पुरूष प्रधानता की बेडियां वाला) जीना और मरना कष्ट साध्य बना दिया। परंपरा और धर्म का सहारा लेकर समाज ने उसे बेडियों में जकड कर रखा। इसी कारण नारी की स्थिति बद–से–बदतर होती चली गई।

आधुनिक काल की बहती हवा ने उसके जीवन और व्यवहार में फिर बदलाव लाकर उपभोग की वस्तु और सौंदर्य बनाने के उपादन से अधिक दिखा नहीं देती' पुरूष पहले इस्तेमाल करो फिर विश्वास करों' वाली मानसिकता ने स्त्री जीवन को अधिक भारक्रिष्ट बनाना शुरू किया है। नारी भावनाओं को कभी पुरूष प्रधान संस्कृती ने जानने कि कोशिश ही नहीं की न उस प्रकार का प्रयास आज हो रहा है। उसका केवल शोषण ही हो रहा है। रक्षा की आड में समाज ने महिलाओं के अधिकार को सीमित कर उन्हें पूरी तरह से पुरूषों के अधिन रहने कि लिए विवश किया जा रहा है। आज उसके मन मस्तिष्क को मारकर आत्मविश्वास, सपने, उमंगों को छिन कर पंगू बना दिया जा रहा है।
स्त्री शिक्षा का विरोध और चौके–चुल्हे को बढ़ावा देने का मतलब और क्या हो सकता है? इस प्रकार की मानसिकता को रेखांकित करते हुए हिंदी के नवोदित कथाकार, कैलास बनवासी' अपने प्रसिध्द उपन्यास 'लौटना नहीं है' में लिखते हैं। "उसके दाई–दादा को अब उसके न पढ़ पाने का कोई दुःख नहींथा। उनके लिए तो लडकी का मतलब ही घर गृहस्थी और चुल्हा–चौका था। यही तो करती है लडकियाँ चाहे कितना भी पढ़े"[1] इतने पढने लिखने के बाद भी पुरूषो की मानसिकता नही बदलती उसके लिए क्या कहे? इस प्रकार के वर्तमान के चित्र को बदलने के लिए अब उसे ही अपनी पुरी शक्ती है। इस की क्षमता, योग्यता, बल, जुटाकर ही सामने आना चाहिए। जिसकी शुरूवात आज होती हुई हमें

Scanned by CamScanne

ISSN :
2348
Febr

[illegible] अपने घर से ही करनी चाहिए। लेखक की धारणा है कि कोई भी काम [illegible] को समझकर स्त्री ने आगे आने कि [illegible] स्त्री [illegible] इस पर्दे के [illegible] मुक्त हो नहीं पाती तब तक [illegible] परिवर्तन की [illegible] घर की कैद से [illegible] मुक्त [illegible] और वेदना, चित्कार, अकेली कंठ की पुकार [illegible] नहीं सकती। उसकी छटपटाहट और [illegible] छटपटाहट को लेखक ने प्रस्तुत उपन्या[illegible] इसलिए आज [illegible] हाथ पैर मारने लगी है। [illegible] कथा की नायिका अपने रिश्तेदारों की अपनी [illegible] नायिका के माध्यम से [illegible] रेखांकित किया है। [illegible] हुई कहती है।

"माताजी अब मैं इस आदमी के साथ नहीं रह सकती आपने जिस आदमी को [illegible] करता है और जान से मारने की बात [illegible] चाहते तो मुझे इस [illegible] है। अब मैं इसके साथ नहीं रह सकती। अगर आप लोग मुझे जरा भी चाहते तो मुझे इस [illegible] निकाल लो। नहीं तो मैं कुछ भी कर लूंगी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि बाकी जीवन [illegible] आप पर बोझ नहीं बनूंगी। मैं आपसे हाथ जोड़कर अनुरोध करती हूँ कि मुझे इस दलदल से निकालिए।" माता-पिता का उसपर विश्वास रखते हुए खुले आसमान में उड़ने के लिए बल [illegible] आवश्यकता है। इसमें ही उसके जीवन का गीत भी है और संगीत भी है।

इस प्रकार स्त्री अब परंपरा व रीति रिवाज़ के नाम किसी भी प्रकार का शोषण, दमन, अत्याचार सहन नहीं करती। इस प्रकार 'लौटना नहीं है' स्त्री संघर्ष की कहानी है। लेखक ने [illegible] वेदना और पीड़ा को अपने उपन्यास द्वारा आवाज़ प्रदान की है।

संदर्भ सूची :-

1) कैलाश बनवासी 'लौटना नहीं है' सामयिक प्रकाशन प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ [illegible]

2) वही, पृष्ठ क्र. 146

3) वही, पृष्ठ क्र. 148